संवर्त

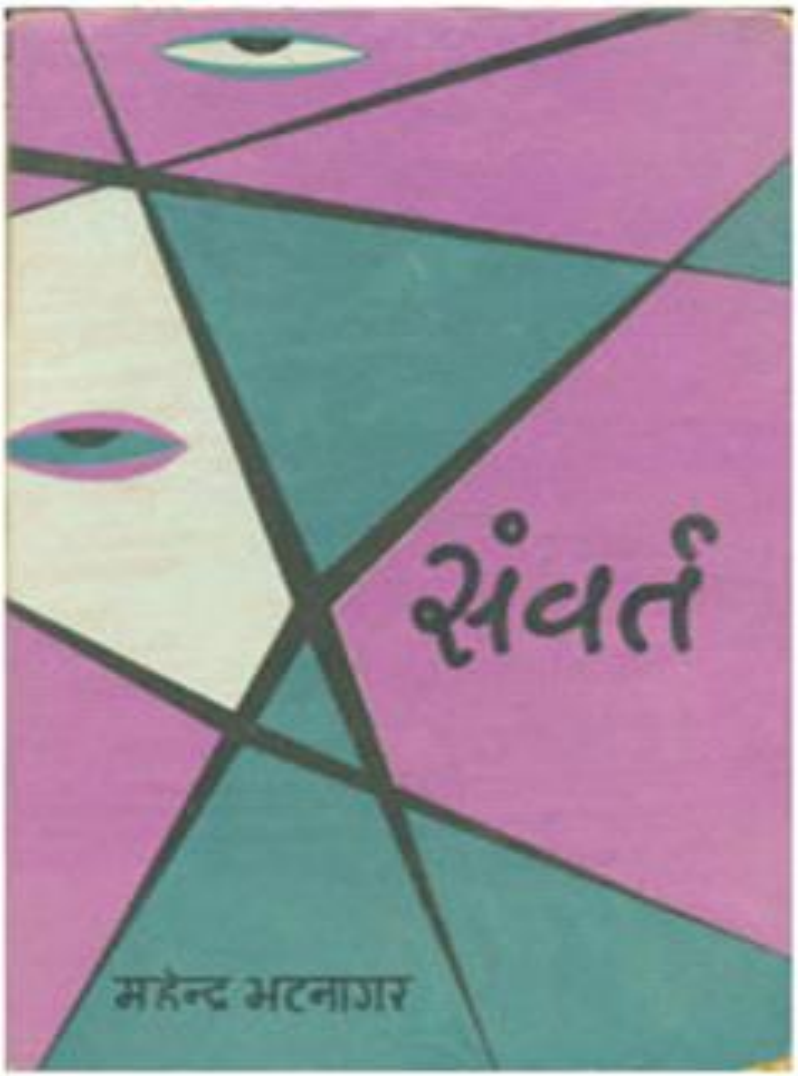

[महेंद्रभटनागर]

कविताएँ

1 संवर्त
2 अपेक्षित
3 समवेत
4 सुलक्षण
5 पुनरपि
6 पातालपानी की उपत्यका से
7 हेमन्ती धूप
8 हिमागम
9 तिघिरा की एक शाम (1)
10 तिघिरा की एक शाम (2)
11 अनभिव्यक्त
12 प्रश्न
13 विक्षोभ
14 अप्रत्याशित
15 नव वर्ष
16 मेरे ही लिए
17 सुकर: दुष्कर
18 दिनान्त
19 अनुदर्शन
20 जी लिया बसन्त

21 अनुशय
22 नियति
23 भिक्षा
24 विश्वास
25 जिजीविषु
26 जीवन प्राप्त जो
27 मोह-भंग
28 दृष्टिकोण
29 वेदना: एक दृष्टिकोण
30 संत्रस्त
31 वस्तु-स्थिति
32 उपलब्धि
33 स्वाँग
34 विपर्यस्त
35 ईर्ष्या
36 आत्म-बोध
37 वर्तमान
38 ऊहापोह
39 परिवेश के प्रति
40 वात्याचक्र
41 जीवन-संदर्भ
42 श्रमजित
43 संकल्प

44 आश्वस्त
45 विचित्र
46 वैषम्य
47 परिणति
48 प्रतिबद्ध
49 योगदान
50 नवोन्मेष
□ □

(1) संवर्त

पथ का मोड़
भाता है मुझे !

बहुत लम्बी डगर से
ऊब जाता हूँ,
अकारण ही
थकावट की शिथिलता में
न समझे डूब जाता हूँ !

सनातन
एक -से पथ पर
नयापन जब नज़र आता नहीं
मुझसे चला जाता नहीं !

तभी तो
हर नवागत मोड़ का
स्नेहिल
हृदयहारी
भाव-भीना
मुग्ध स्वागत !

इसमें हर्ज़ क्या है —
पथ का मोड़
यदि इतना सुहाता है मुझे ?
पथ का मोड़ भाता है मुझे !

□ □

(2) अपेक्षित

सरस अधरों पर
प्रफुल्लित कंज-सी
मुसकान हो !
या उमंगों से भरा
मधु-गान हो !

मुसकान की
मधु-गान की
अभिशप्त इस युग में कमी है !
अत्यधिक अनवधि कमी है !
मात्र —
नीरव नील होठों पर
बड़ी गहरी परत
हिम की जमी है !

प्रत्येक उर में
वेदना की खड़खड़ाती है फ़सल ,

आह्लाद-बीजों का नहीं अस्तित्व,
केवल झनझनाते अंग,
मानव —

चित्र-रेखा-वत्

खोजता सतरंग !

□ □

(3) समवेत

संगीत-सहायिनी
सुकण्ठी
आ
जीवन की तृष्णा को
गा !

सप्त-सुरों से
स्पन्दित हो
अग -जग ,
संगीतक बन जाये
सूना मग !

ला —
सुरबहार-वीणा-मृदंग
विविध वाद्य ला
बजा,
सुकण्ठी गा !
जीवन की तृष्णा को
गा !

□ □

(4) सुलक्षण

सुबह से आज
किस अव्यक्त से
उर उल्लसित !

सहसा
सुभाषित राग,
दायीं आँख
रह -रह कर
विवश स्पन्दित !

दूर कलगी पर
बिखरती
अजनबी गहरी सुनहरी आब ,
पहली बार
गमले में खिला है
एक लाल गुलाब !
न जाने किस
अजाने
आत्म-शुभ सम्भाव्य की
यह भूमिका !
रोमांच पुष्पों से

लदी तन -यूथिका !

शायद,

आज तुमसे भेंट हो !

□ □

(5) पुनरपि

मानस में
अप्रत्याशित अतिथि से तुम
अचानक आ गये !
माना —
नहीं था पूर्व-प्रस्तुत
आर्द्र अगवानी सजाये,
हार कलियों का लिए,
हर द्वार बन्दनवार बाँधे,
प्रति पलक
उत्सुक प्रतीक्षा में !

तुम्हीं प्रिय पात्र,
अभ्यागत !
बताओ —
नहीं हूँ क्या
सदा से स्वागतिक मैं तुम्हारा ?

हर्ष-पुलकित हूँ,
अकृत्रिम भूमि पर मेरी
सहज बन
अवतरित हो तुम !

सुपर्वा
धन्य हूँ,
कृत-कृत्य हूँ !

पर , यह सकुच कैसी ?
रुको कुछ देर
अनुभूत होने दो
अमित अनमोल क्षण ये !

जानता हूँ —
तुम प्रवासी हो,
अतिथि हो
चाहकर भी
मानवी आसक्ति के
सुकुमार बन्धन में
बँधोगे कब ?

अरे फिर भी....
तनिक... अनुरोध
फिर भी ....!

□ □

(6) पातालपानी की उपत्यका से

तुम्हारे अंक में
विश्रांति पाने आ गया
भट का प्रवासी
मैं !

अनावृत वक्ष-ढालों पर
सहज उतरूँ
सबल चट्टान रूपी बाँह दो,
शीतल अतल -की छाँह दो !
तप्त अधरों को
सरस जलधार का सुख-स्पर्श दो,
युग मूक मन को हर्ष दो,
अतृप्त आत्मा को
सुखद अनुराग-संगम बोध दो !
एकांत में
कल -कल मधुर संगीत से
दो स्वप्न का अधिवास बहुरंगी !
ओ गहन घाटी !
आ गया हूँ मैं
तुम्हारा प्राण
चिर-संगी !

कुछ क्षणों को बाँध लूँ
अल्हड़ तुम्हारी धार से
बेबस उमड़ती भावना का ज्वार !
फिर इस जन्म में
इस ओर
आना हो, न हो !

क्या मुझ प्रवासी का
नहीं इतना तनिक अधिकार
छोड़ जाऊँ जो
प्यार सूचक
चिन्ह ही
दो .. चार .... ?

□ □

(7) हेमन्ती धूप

कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती !

सुबह से शाम तक
इसमें नहाकर भी
हमारा जी नहीं भरता,
विलग हो
दूर जाने को
तनिक भी मन नहीं करता,
अरे, कितनी मधुर है
धूप हेमन्ती !

प्रिया-सम
गोद में इसकी
चलो, सो जायँ,
दिन भर के लिए खो जायँ !

कितनी काम्य
कितनी मोहिनी है
धूप हेमन्ती !
कितनी सुखद है

धूप हेमन्ती !

□ □

(8) हिमागम

सच , अब नहीं !
सौगन्ध ले लो
अब नहीं !
अवहेलना-अवमानना
हरगिज़ नहीं !
ज्योतिर्मयी
सुखदा
सुनहरी धूप
आओ !

थपथपाओ मत ,
खुले हैं
द्वार, वातायन, झरोखे सब ,
उपेक्षा अब नहीं
सौगन्ध ले लो।
अब नहीं !

प्रतीक्षातुर तुम्हारा
भेंट लो;
प्रति अंग को
उत्तेजना दो,

उष्णता दो !
ओ शुभावह धूप
अंक समेट लो,
हेमाभ कर दो !

ओढ़ लूँ तुमको
बहे जब तक हिमानिल,
मन कहे तब -तक
दिवा-स्वप्निल तुम्हारे लोक में
खोया रहूँ,
जी भर दहूँ, जी भर दहूँ !
तन रश्मियाँ भर दो !

सुनहरी धूप
आओ !
अब नहीं
अवहेलना-अवमानना,
हरगिज़ नहीं !
सौगन्ध ले लो !

□ □

(9) तिघिरा की एक शाम (चित्र : एक)

तिघिरा के शान्त जल में
तुम्हारा गोरा मुखड़ा
रहस्य भरे
निर्निमेष मुझे देखता
तैर रहा है !
सुडौल मांसल गोरी बाँह उठा
अरुणिम करतल पर हिलती
चक्रोंवाली अंगुलियाँ
दूर तिघिरा के वक्षस्थल से
मुझे बुलातीं !

मैं —
जो तट पर।
देख रहा छबि
बाइनाक्युलर लगाये
वासना बोझिल आँखों पर !

□ □

(10) तिघिरा की एक शाम (चित्र : दो)

तिघिरा के सँकरे पुल पर
नमित नयन
सहमी-सहमी
तुम !

तेज़ हवा में लहराते केश,
सुगठित अंगों को
अंकित करता
फर -फर उड़ता
कांजीवरम् की साड़ी का फैलाव,
दो फ़ुर्तीले हाथों का
कितना असफल दुराव !

हौले-हौले
चलते
नंगे गदराए गोरे पैर,
सपने जैसी
अद्‌भुत रँगरेली रोमांचक सैर !

□ □

(11) अनभिव्यक्त

व्यक्ति -
अपनी अकल्पित हर व्यथा की
सर्व-परिचित परिधि !

किंचित् अनाकृत अतिक्रमण
अपने-पराये के लिए रे
अतिकथा,
अरुचिकर अतिकथा !
अनुभूत जीवन-वेदना
बस
बाँध रक्खो
पूर्व निर्धारित परिधि में,
व्यक्ति के परिवेश में,
अवचेतना के देश में।

□ □

(12) प्रश्न

किसने
अनास्था के हज़ारों बीज
मानस-भूमि पर
छितरा दिये ?

किसने
हमारी अचल निष्ठा के
विरल अनमोल माणिक
संशयावह राह पर
बिखरा दिये ?

रीती अश्रद्धा के
नुकीले शूल
चरणों में चुभा
विश्वास की
अक्षय धरोहर छीन ली ?

किसने
अचानक
खोखले दर्शन-कथन से,
सत्य

अनुभव-सिद्ध
जीवन-मान्यताओं की
अकुण्ठित ज्ञान-गुरुता हीन की ?

किसने
विनाशक आँधियों के वेग से
विचलित किये
उन्नत गगन -चम्बी
हमारी लौह-आस्था के शिखर ?

□ □

(13) विक्षोभ

इच्छाएँ हमारी —
त्रस्त हैं,
उद्विग्न हैं,
आकार पाने के लिए !

आसंग इच्छाएँ —
जिन्हें हमने
बड़े ही यत्न से
गोपन-सुरक्षित स्थान पर रक्खा सदा
वांछित अनागत की प्रतीक्षा में !

विविक्षित भावनाएँ
आकुलित हैं,
आक्रमित हैं,
वास्तविक अनुभूति का
आधार पाने के लिए !

पर , वायुमण्डल में
न जाने किस तरह की
अश्रुवाही वाष्प है परिव्याप्त ;
जिससे हम विवश हैं

मूक रोने के लिए,
आक्रोश तृष्णा भार
ढोने के लिए !

□ □

(14) अप्रत्याशित

सदा.... सदा की तरह
नव मेघों के उपहारों की
लेकर बाढ़
आया आषाढ़ ;
पर , तीव्र पिपासाकुल चातक ने
कुछ न कहा,
सूनी-सूनी आँखों से
बस देखता रहा,
आगत का स्वागत नहीं किया,
जीवन-रस नहीं पिया !

सदा....सदा की तरह
झर -झर सावन बरसा,
रतिकर कंपित वक्षस्थल ले
उमड़ी / तड़पीं
श्याम घटाएँ
हरित सजल आँचल फैलाये,
पर , नृत्य मयूरों ने नहीं किया,
भादों बीत गया नीरस
मौन गगन ने
कजली गीतों का स्वर नहीं दिया।

सदा... सदा की तरह
आयीं शारद-ज्योत्स्ना रातें
शीतल।
याद दिलाने
मांसल विधु-वदनी की बातें !
पर , शुक्लाभिसारिका
निज गृह से नहीं हिली,
पथ —
सुनसान बनाये
प्रति निशि जागा,
शान्त सरोवर में
नहीं मोरपंखी कहीं चली !

सदा...सदा की तरह
लह -लह मधु-माधव आया,
नव पल्लव
रंग-बिरंगे पुष्पों के गजरे लाया
पर , वासन्ती नहीं खिली,
मधुकण्ठी की पीड़ा भी नहीं सुनी !

बोझिल तिथियों का,
धूमिल स्मृतियों का,

एक बरस

बी...त ...ग ...या...!

□ □

(15) नव वर्ष

हे नव वर्ष !
तुम्हारा स्वागत-सत्कार
चाहते हुए भी
न कर सका !

तुम्हारे शुभागमन के पूर्व
कई दिनों से
विविध आयोजनों की
रूपरेखा बनाने का विचार
मन में आता रहा,
न जाने
क्या-क्या अभिनव-अनूठा समाता रहा ;
पर , कार्यरूप में
तनिक भी
परिणत न कर सका उसे !

हे नव वर्ष !
तुम आ गये
बिना किसी धूमधाम के ?

तुम्हें प्यार भरी भुजाओं में

चाहते हुए भी
न भर सका !

हे नव वर्ष !
तुम सचमुच
कितने उदास हो रहे होगे !
तुम्हारे अभिनन्दन में
इस बार
एक क्या अनेक कविताएँ
लिखना चाहते हुए भी
एक पंक्ति भी तुम्हें
समर्पित न कर सका !

अरे, यह क्या हुआ ?
कुछ भी तो स्मरणीय विशिष्ट
घटित हो जाता —
जीवन-नाटक का
मंगलाचरण
या
पटाक्षेप !
पर , कुछ भी तो नहीं हुआ ;
मात्र पूर्वाभ्यास का बोध होता रहा !

हे नव वर्ष !
तुम्हें जीवन-क्रमणिका में
महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने की साध लिए
जागता... सोता रहा !
चाहते हुए भी
न जी सका,
न मर सका !

□ □

(16) मेरे ही लिए

शिशिर की
मूक ठण्डी रात —
मेरे ही लिए !

सितारे सब अपरिचित
वृक्ष सोये
सामने बस एक
तम का गात —
मेरे ही लिए !

न जानें
किन अक्षम्य अभूत पापों का
कुफल ;
मधुलोक खोया
हर मनुज,
पर , मात्र मैं —
परिश्रान्त विह्नल !

यह अकेली स्तब्ध
बोझिल
हिम ठिठुरती रात —

मेरे ही लिए !

□ □

(17) सुकर: दुष्कर

महज़
दिन बिताना सरल है,
जीना कठिन !

ज़िन्दगी को काटना
कितना सहज है !

खण्डित व्यक्तित्व के
धागों / रेशों को
सहेजना
सँवारना
सीना कठिन !

केवल
समय -असमय
उगलने को गरल है
पीना कठिन !
महज़
दिन बिताना सरल है
जीना कठिन !

□ □

(18) दिनान्त

आज का भी दिन
हमेशा की तरह
चुपचाप बीत गया !
अनिच्छित असह
ब्राह्ममुहूर्त का कर्कश
अलार्म बजा,
दिनागम की खुशी में
एक पक्षी भी न चहका !

भोर
घर -घर बाँट आयी स्वर्ण !
मेरे बन्द द्वारों पर
किसी ने भी
न दस्तक दी
न धीरे से किसी ने भी
पुकारा नाम !

प्रौढ़ा दोपहर
प्रत्येक की दैनन्दिनी में
लिख गयी
विश्रान्ति के क्षण ;
मात्र मुझको

ऊब
केवल ऊब !

अलसाया शिथिल
अब देखता हूँ
आ रही सन्ध्या
अरुणिमा,
तुम भला क्या दे सकोगी ?
मौन उत्तर था —
‘ अँधेरा....
घन अँधेरा !’

□ □

(19) अनुदर्शन

उड़ गये
ज़िन्दगी के बरस रे कई ,
राग सूनी
अभावों भरी
ज़िन्दगी के बरस
हाँ, कई उड़ गये !

लौट कर
आयगा अब नहीं
वक़्त
जो —
धूल में, धूप में
खो गया,
स्याह में सो गया !

शोर में
चीखती ही रही ज़िन्दगी,
हर क़दम पर विवश,
कोशिशों में अधिक विवश !

गा न पाया कभी
एक भी गीत मैं हर्ष का,
एक भी गीत मैं दर्द का !

गूँजता रव रहा
मात्र :
संघर्ष....संघर्ष... संघर्ष !
विश्रान्ति के
पथ सभी मुड़ गये !
ज़िन्दगी के बरस ,
रे कई
देखते...देखते
उड़ गये !

□ ➡

(20) जी लिया बसन्त

हमने भी
जी लिया बसन्त !

सुना था —
बसन्त में फूल खिलते हैं,
हर डाल कोंपलों
नव पल्लवों से लद जाती है,
नव -रस से भर जाती है !

बसन्त में
मदिर-मधुर भावनाओं के
फूल खिलते हैं,
सारी सृष्टि
रंग-बिरंगे परिधानों से सज जाती है,
अन्तर में विविध स्वर
अनायास बज उठते हैं,
सब तरफ़ अजानी झंकारों की गूँज
लहरती है
छा जाती है !
हर सुनसान
अभिनव स्पन्दन पा जाता है,

हर अंधकार
आशा के स्वर्णिम आलोक से
जगमगा जाता है !
हर श्लथ-निश्चेष्ट हृदय
अपरिचित उमंगों से
सिहरता
कसमसाता है !

हर अधर
अभोगे दर्द की अनुभूति पा
फड़फड़ाता है
गुनगुनाता है !
हाथ
कल्पना के उच्चतम शिखरों को
छू लेते हैं !

पर , हमने, यह सब ,
कुछ भी तो न जाना,
कुछ भी तो न देखा !
जीवन की कश -म -कश में
बीत गया बसन्त !
हमने भी जी लिया बसन्त !

□ □

(21) अनुशय

हँसकर और रोकर
रे, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

जागकर दिन
रात सो कर
हाँ, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

होश में रह
या कि हो बेहोश
कैसे यह
बिता दी
ज़िन्दगी हमने ?
जी न पाये !

पाकर तनिक
पर , सब गँवाकर
हा, बिता दी

ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

तरसकर / तड़पकर
बनते-बिगड़ते
मूक-मुखरित
एक यदि संगत —
असंगत अन्य
कुछ सपने निरखते ही
बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

□ □

(22) नियति

संदेहों का धूम भरा
साँसें
कैसे ली जायँ !

अधरों में
विष तीव्र घुला
मधुरस
कैसे पीया जाय !

पछतावे का ज्वार उठा
जब उर में
कोमल शय्या पर
कैसे सोया जाय !

बंजर धरती की
कँकरीली मिट्टी पर
नूतन जीवन
कैसे बोया जाय !

□ □

(23) भिक्षा

संपीडित अँधेरा
भर दिया किसने
अरे !
बहूमूल्य जीवन-पात्रा में मेरे ?
एक मुट्ठी रोशनी
दे दो
मुझे !

संदेह के
फणधर अनेकों
आह !
किसने
गंध-धर्मी गात पर
लटका दिये ?

विश्वास-कण
आस्था-कनी
दे दो
मुझे !

एक मुट्ठी रोशनी

दे दो

मुझे !

□ □

(24) विश्वास

जीवन में
पराजित हूँ,
हताश नहीं !

निष्ठा कहाँ ?
विश्वासघात मिला सदा,
मधुफल नहीं,
दुर्भाग्य में
बस
दहकता विष ही बदा !

अभिशप्त हूँ,
पग -पग प्रवंचित हूँ,
निराश नहीं !

क्षणिक हैं —
ग्लानि
पीड़ा
घुटन !
वरदान समझो
शेष कोई

मोह-पाश नहीं !

□ □

(25) जिजीविषु

गहरा अँधेरा
साँय....साँय पवन ,
भवावह शाप-सा
छाया गगन ,
अति शीत के क्षण !

पर , जियो इस आस पर —
शायद कि कोई
एक दिन
बाले रवि-किरण-सा
राग-रंजित
हेम मंगल-दीप !

सुनसान पथ पर
मूक एकाकी हृदय तुम,
भारवत् तन
व्यर्थ जीवन !

पर , चलो इस आस पर —
शायद किसी क्षण
चिर-प्रतीक्षित

अजनबी के
चरण निःसृत कर उठें संगीत !

खो गया मधुमास,
पतझर मात्र पतझर ;
फूल बदले शूल में
सपने गये सन धूल में !

ओ आत्महंता !
द्वार-वातायन करो मत बंद,
शायद —
समदुखी कोई
भटकती ज़िन्दगी आ
कक्ष को रँग दे
सुना स्वर्गिक सुधाधर गीत !

□ □

(26) जीवन प्राप्त जो

जीने योग्य
जीवन के सुनहरे दिन —
सुकृत वरदान-से,
आनन्दवाही गान-से,
मधुमय-सरस -स्वर-गूँजते दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल
हर्ष पीने योग्य !

जीवन के
सतत प्रतिकूलता के दिन,
उदासी-खिन्नता
अति रिक्तता से सिक्त
बोझिल दिन —
अशुभ अभिशाप-से,
विष-दंश-वाही-ताप-से,
कटु विद्ध दुर्भर दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल
मर्ष पीने योग्य !

जीवन प्राप्त जो —

अच्छा

बुरा

अविराम जीने के लिए !

अनिवार्य जीने के लिए !

□ □

(27) मोह-भंग

स्वीकार शायद
जो कभी भी था न
तुमको
भ्रांति उस अधिकार की
यदि आज
मानस में प्रकाशित हो गयी
        सुन्दर हुआ
        शुभकर हुआ !

अस्थिर
प्रवंचित मन !
न समझो —
प्राप्य
जीवन की
बड़ी अनमोल अति दुर्लभ
धरोहर खो गयी !

मूर्च्छा नहीं,
निश्चय
        सजगता।
मोह का कुहरा नहीं,

परिज्ञान

जीवन-वास्तविकता।

अर्थ जीवन को मिलेगा अब
नये आलोक में,
उद्विग्न मत होना तनिक भी
शोक में !

□ □

(28) दृष्टिकोण

अतीत का मोह मत करो,
अतीत —
मृत है !
उसे भस्म होने दो,
उसका बोझ मत ढोओ
शव -शिविका मत बनो !
शवता के उपासक
वर्तमान में ही
एक दिन
स्वयं निश्चेष्ट हो रहेंगे
अनुपयोगी
अवांछित
अरुचिकर !

जो व्यतीत है —
अस्तित्वहीन है !
वह वर्तमान का नियंत्रक क्यों हो ?
वह वर्तमान पर आवेष्टित क्यों हो ?
वर्तमान को
अतीत से मुक्त करो,
उसे सम्पूर्ण भावना से

जियो, भोगो !
वास्तविकता के
इस बोध से —
कि हर अनागत
वर्तमान में ढलेगा !
अनागत —
असीम है !
□ □

(29) वेदना: एक दृष्टिकोण

हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ !

दर्द यदि
अभिव्यक्त —
मुख पर एक हलकी-सी
शिकन के रूप में भी,

या सजगता की
तनिक पहचान से उभरे
दमन के रूप में भी,

निंद्य है !
धिक् है !
स्खलित पौरुष्य !

उर में वेदना है
तो सहज कुछ इस तरह गाओ
कि अनुमिति तक न हो उसकी
किसी को !

सिक्त मधुजा कण्ठ से
उल्लास गाओ !
पीत पतझर की
तनिक भी खड़खड़ाहट हो नहीं
मधुमास गाओ !
सिसकियों को
तलघरों में बन्द कर
नव नूपुरों की
गूँजती झनकार गाओ !
शून्य जीवन की
व्यथा-बोझिल उदासी भूलकर
अविराम हँसती गहगहाती
ज़िन्दगी गाओ !
महत् वरदान-सा जो प्राप्त
वह अनमोल
जीवन-गंधमादन से महकता
प्यार गाओ !

यदि हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ !
दूधिया
सितप्रभ
रुपहली

ज्योत्स्ना भर मुसकराओ !

□ □

(30) संत्रस्त

दृष्टि-दोषों से सतत संत्रस्त
अर्थ-संगति हीन,
अद्‌भुत,
सैकड़ों पूर्वाग्रहों से ग्रस्त
हम , सन्देह के गहरे तिमिर से घिर
परस्पर देखते हैं
अजनबी से !

और ...
अनचाहे
विषैले वायुमण्डल में
घुटन के बोझ से
निष्कल तड़पते जब —

घहर उठता तभी
अति निम्नगामी
क्षुद्रता का सिन्धु,
अनगिनत
भयावह जन्तुओं से युक्त !
मनुजोचित सभी
शालीनता के बंधनों से मुक्त !

□ □

(31) वस्तु-स्थिति

सर्वत्र

कड़वाहट सुलभ

दुर्लभ मधुरता !

सर्वत्र

घबराहट प्रकट

जीवट विरलता !

सर्वत्र

झुलझलाहट-प्रदर्शन

लुप्त स्थिरता !

सर्वत्र

आडम्बर-बनावट

दूर कोसों वास्तविकता !

□ □

(32) उपलब्धि

अप्राप्य रहा —
वांछित,
कोई खेद नहीं।

तथाकथित
आभिजात्य गरिमा के
अगणित आवरणों के भीतर
नग्न क्षुद्रता से परिचय,
निष्फलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।

सहज प्रकट
तथाकथित
निष्पक्ष-तटस्थ महत् व्यक्तित्व का
अदर्शित अभिनय;
अ सफलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।

□ □

(33) स्वाँग

मुझे
कृत्रिम मुसकराहट से चिढ़ है !

कुछ लोग
जब इस प्रकार मुसकराते हैं
मुझे लगता है
डसेंगे !
अपने नागफाँस में कसेंगे !

यही
अप्रिय मुसकराहट
शिष्टाचार का जब
अंग बन जाती है,

कितनी फीकी
नज़र आती है !
मुझे
इस कृत्रिम फीकी मुसकराहट से
चिढ़
बेहद चिढ़ है !

□ □

(34) विपर्यस्त

बुद्धि के उच्चतम शिखरों तक पहुँचे
हम
विज्ञान युग के प्राणी हैं
महान
    समुन्नत
    सर्वज्ञ !

हमारे लिए
जीवन के
सनातन सिद्धान्त
शाश्वत मूल्य
    अर्थ-हीन हैं !

हमारे शब्द-कोश में
‘ हृदय’
मात्रा एक मांस-पिण्ड है
जो रक्त-शोधन का कार्य करता है
तन की समस्त शिराओं को
ताज़ा रक्त प्रदान करता है,
उसकी धड़कन का रहस्य

हमारे लिए नितान्त स्पष्ट है,
कमज़ोर पड़ जाने पर
अथवा
गल -सड़ जाने पर
हम उसको बदल भी सकते हैं।
हृदय से सम्बन्धित
पूर्व-मानव का
समस्त राग-बोध
उस के
समस्त कोमल-मधुर उद्गार
हमारे लिए
उपहासास्पद हैं !

हमारे लिए
पूर्व-मानव की
पारस्परिक प्रणय भावनाएँ
विरह-वियोग जनित चेष्टाएँ
सब
बचकानी हैं
अस्वस्थ हैं
निरर्थक हैं !

यह हमारे लिए

मानव इतिहास में
समय का सबसे बड़ा अपव्यय है !

हमारे लिए
आकर्षण —
इन्द्रिय सुख की कामना का पर्याय !
हाव —
आंगिक अभिनय का अभ्यासगत स्वरूप,
नाट्य-शालाओं में
प्रवेश प्राप्त कर
सहज ही ग्राह्य!
प्रेमालाप —
कृत्रिम
चमत्कारपूर्ण वाणी-विलास !
मिलन —
मात्रा स्थूल इन्द्रिय सुख के निमित्त !
स्मृति —
ढोंग का दूसरा नाम
या
अभाव की पीड़ा !
प्रेम —
भ्रम / धोखा
अस्तित्वहीन

‘ ढाई आखर ’ का शब्द-मात्र !

□ □

(35) ईर्ष्या

ईर्ष्या
करो नहीं,
ईर्ष्या से
डरो नहीं !

किसी की ईर्ष्या-अभिव्यक्ति
संकेतित हो
वाचिक हो
क्रियात्मक हो
तुम्हारी सफलता
बोधिका है !
आत्म-गहनता
शोधिका है !

उससे त्रस्त क्यों होते हो ?
इतने अस्तव्यस्त क्यों होते हो ?

ईर्ष्या
जितनी स्वाभाविक है
उसका दमन
उतना ही आवश्यक है।

ईर्ष्या का
दलन करो,
वरण नहीं !

ईर्ष्या-आश्रय को
सन्तुलित करो,
प्रगति-प्रेरित करो।
उसे विकास के
अवसर दो,
उसके हलके मानस में
गरिमा भर दो।

फिर कोई ई र्ष्या नहीं करेगा,
फिर कोई ईर्ष्या से नहीं डरेगा।

जिस दिन —
मानवता
ईर्ष्या के घातों-प्रतिघातों को
सह जाएगी,
उस दिन से —
वह मात्र
संचारी-भाव-विवेचन में

महत्त्वहीन हो
काव्य-शास्त्र का साधारण विषय
रह जाएगी !

□ □

(36) आत्म-बोध

हम मनुज हैं —
मृत्तिका की सृष्टि
    सर्वोत्तम
    सुभूषित,

प्राणवत्ता चिन्ह
सर्वाधिक प्रखर,
अन्तःकरण
    परिशुद्ध ;
प्रज्ञा
    वृद्ध !

लघुता —
    प्रिय हमें हो,
रजकणों की
अर्थ-गरिमा से
    सुपरिचित हों,
    परीक्षित हों।

मरण -धर्मा
मृत्यु से भयभीत क्यों हो ?

चेतना हतवेग क्यों हो ?

दुर्मना हम क्यों बनें ?

सदसत् विवेचक

मूढ़ग्राही क्यों बनें ?

□ □

(37) वर्तमान

युग
अराजकता-अरक्षा का,
सतत विद्वेष-स्वर-अभिव्यक्ति का,
कटु यातनाओं से भरा,
अमंगल भावनाओं से डरा !
धूमिल
गरजते चक्रवातों ग्रस्त !
प्रतिक्षण
अभावों-संकटों से त्रस्त !

युग
निर्दय विघातों का,
असह विष दुष्ट बातों का !
अभोगी वेदना का,
लुप्त मानव-चेतना का !

घोर
अनदेखे अँधेरे का !
अजनबी
शोर,
रक्तिम क्रूर जन -घातक

सबेरे का !

☐ ☐

(38) ऊहापोह

प्रश्न —
अविकल स्थिर
अपनी जग ह पर।
पंगु
सारी तर्कना,
विखण्डित
कल्पना !
अनिश्चित की शिलाओं तले
रोपित प्रश्न !
सूत्राभाव
पूर्व...उत्तर...सर्वत्र
ठहराव !

यह कश -म -कश
और कब तक ?
विवश मनःस्थिति
और कब तक ?
और कब तक
ओढ़े रहोगे प्रश्न ?
उलझी ऊबट सतह पर।

सब पूर्ववत्

अपनी जगह पर।

□ □

(39) परिवेश के प्रति

कितनी तीखी ऊमस से
परिपूर्ण गगन ,
लहराती अग्नि-शिखाओं से
कितना परितप्त भुवन !
कितना क्षोभ-युक्त
भाराक्रांत
दमित
मानव-मन !
जीवन का
वातावरण समस्त
थका-हारा,
कारावद्ध !

आओ
इसको बदलें,
गतिमान करें,
मल्लार-राग से भर दें
जलवाह !
पवन -संघातों से
निःशेष करें
दिग्दाह !□ □

(40) वात्याचक्र

अंधड़
आ रहा सम्मुख
उमड़ता
सनसनाता
वेगवाही
धूलि-धूसर !

कुछ क्षणों में
घेर लेगा बढ़
तुम्हारा भी गगन !
जागो उठो
दृढ़ साहसिक मन
हो सचेत-सतर्क !
थपेड़े झेलने का प्रण
अभी
तत्काल
निश्चय आत्मगत कर।

अंधड़ों की शक्ति
तुमको तौलनी है,
संकटों पर

आत्मबल सन्नद्ध हो
जय बोलनी है,
प्राण की सोयी हुई
अज्ञात-मेधा को सचेतन कर !

हिमालय-सम
सुदृढ़ व्यक्तित्व के सम्मुख
गरजता क्रूर अंधड़
राह बदलेगा !
मरण का तीव्र धावन
तिमिर अंधड़
राह बदलेगा !

□ □

(41) जीवन-संदर्भ

आओ
जीवन की गीता को
अभिनव संदर्भ प्रदान करें !
बदला
जब परिवेश मनुज का
आओ
नयी ऋचाओं का निर्माण करें !

नव मूल्यों को स्थापित कर
जीवन-धर्मी कविता के
अन्तर-बाह्य स्वरूपों को
अभिनव रचना दे !
जीवन्त नये आदर्शों की आभा दें !
जगमग स्वर्णिम गहने पहना दें !
जीवन की प्रतिमा को
नयी गठन
नव भाव-भंगिमा से सज्जित कर ;
मानव को
चिर-इच्छित
संबंधों की गरिमा से
सम्पूरित कर

युग को महिमावान करें !
आओ
नव राहों के अन्वेषी बन
नूतन क्षितिजों की ओर
प्रवह प्रयाण करें !

□ □

(42) श्रमजित्

श्रम करेंगे तो —
हमारे स्वप्न सब साकार होंगे !
सुदृढ़ आधार होंगे !

उन्मुक्त हो,
सम्पन्नता सुख शान्ति के
नव लोक में
जीवन जिएंगे हम ,
सभ्यता-संस्कृति वरण कर
ज्ञानमय आलोक में
प्रतिक्षण रहेंगे हम !
हमारी कल्पनाएँ मूर्त होंगी
श्रम करेंगे तो —
सतत ज्वाला उगलते
अग्नि-भूधर क्षार होंगे !
हमारे स्वप्न सब साकार होंगे !
श्रम करेंगे तो —
अभावों की गहनतम रिक्तता
भर जायगी,
हर हीनता को रौंद
श्रम-जल -धार

जीवन पुण्यमय कर जायगी !
श्रम करेंगे हम —
उपस्थित आज आगत के लिए,
भावी अनागत के लिए !
हम
वर्तमान-भविष्य के
अविजित
नियन्ता हो, नियामक हों !
विचक्षण
अभिलषित-जीवन-विधायक हों !

□ □

(43) संकल्प

शक्तिमत्व हो,
दीपाराधन हो !
मरणान्तक रावण की शर्तें
निविड़-तमिस्रा की पर्तें
टूटेंगी,
टूटेंगी !

कृत-संकल्पों के राम जगे
जन -जन के अन्तर में !
आग्नेय-अस्त्र
पुष्पक-मिग
संचालक उत्पन्न हुए
घर -घर में !
सीमाओं के प्रहरी
बने अजेय हिमालय,
मानवता की निश्चय जय !

दीपोत्सव हो,
दीपोत्सव हो !
ज्योति-प्रणव हो !
हर बार

तमस्र युगों पर
प्रोज्ज्वल विद्युत आभा
फूटेगी,
फूटेगी !

शक्तिमत्व हो,
दीपाराधन हो !
गर्विता अमा का
कण -कण बिखरेगा,
दीपान्विता धरा का
आनन निखरेगा !

□ □

(44) आश्वस्त

चैराहा हो
या सतराहा
किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं,
दिग्भ्रम होने का
भय मन पर आरूढ़ नहीं।

माना
पथ से इतनी पहचान नहीं है,
मंज़िल तक हो आने का
परिज्ञान नहीं है,
पर ,
लक्ष्य-दृष्टि है साफ़ अगर
तो पढ़ लेगी
पथ पर अंकित —
क्रोशों की संख्या,
उत्तर-दक्षिण
पूरब-पश्चिम
स्थित
नगरों के नाम सभी।
फिर —
चैराहों-सतराहों से

आगे बढ़ना
नहीं कठिन,
फिर —
चैराहों-सतराहों पर
होना नहीं मलिन।

नाना मत ,
नाना शासन-पद्धतियाँ,
अगणित राहें,
अगणित नारे-झण्डे,
अनगिनती
आपस में तीव्र विरोधी आवाजें,
पर ,
यदि युग को पढ़ सकने की
क्षमता है,
यदि जन -मन की धड़कन से
निज अन्तर की समता है,
तो असमंजस का प्रश्न न होगा,
निष्ठा निर्मूल न होगी,
चैराहों-सतराहों के मोड़ों से
पथ भूल न होगी !

□ □

(45) विचित्र

पृथ्वी का क्षेत्राफल
चाहे कितना भी हो,
हमें रहने को मिली है
यह कब्र जैसी
कोठरी !
जिसमें —
ज़िन्दा होने का
भ्रम होता है,
जिसमें —
ख़ुद को मुर्दा समझकर ही
बमुश्किल

जीया जा सकता है !
बरसाती रातों में
यह सोचना
कितना अद्‌भुत लगता है µ
मुर्दों की कब्रें
अच्छी हैं इससे
उनकी छतें तो नहीं टपकतीं ;
शव
धरती माँ की गोद में

आराम से तो सोते हैं !
हम तो गीले बिस्तर पर
रात भर जगते हैं,
तत्त्ववेत्ताओं जैसे
चुपचुप रोते हैं !

□ □

(46) वैषम्य

हर व्यक्ति का जीवन
नहीं है राजपथ —
उपवन सजा
वृक्षों लदा
विस्तृत
अबाधित
स्वच्छ
समतल
स्निग्ध !
सम्भव नहीं
हर व्यक्ति को
उपलब्ध हो
ऐसी सुगमता,
इतनी सुकरता।

सम दिशा
सम भूमि पर
आवास सबके हैं नहीं प्रस्थित,
एक ही गन्तव्य
सबका है नहीं
जब

अभिलषित।

कुछ को
पार करनी ही पडेंगी
तंग-सँकरी
कण्ट-कँकरीली
घुमावोंदार
ऊँची और नीची
जन -बहुल
अंधारमय
पगडण्डियाँ — गलियाँ
पसीने-धूल से अभिषिक्त,
प्रति पग पंक से लथपथ।

नहीं,
हर व्यक्ति का जीवन
सकल सुविधा सहित
आलोक जगमग
राजपथ !

जब भूमि बदलेगी,
मार्ग बदलेगा !

□ □

(47) परिणति

आजन्म
अपमानित-तिरस्कृत
ज़िन्दगी
पथ   से बहकती यदि —
              सहज   ;
              आश्चर्य क्या है ?

आजन्म
आशा-हत
सतत   संशय-भँवर उलझी
पराजित ज़िन्दगी
अविरत लहकती यदि —
              सहज   ;
              आश्चर्य क्या है ?

आजन्म
वंचित रह
अभावों-ही-अभावों में
घिसटती ज़िन्दगी
औचट   दहकती यदि —
              सहज   ;

आश्चर्य क्या है ?

☐ ☐

(48) प्रतिबद्ध

हम
मूक कण्ठों में
भरेंगे स्वर
चुनौती के,
विजय-विश्वास के,
सुखमय भविष्य
प्रकाश के,
नव आश के !

हर व्यक्ति का जीवन
समुन्नत कर
धरा को
मुक्त शोषण से करेंगे,
वर्ग के
या वर्ण के
अन्तर मिटा कर
विश्व-जन -समुदाय को
हम
मुक्त दोहन से करेंगे !

न्याय-आधारित

व्यवस्था के लिए
प्रतिबद्ध हैं हम ,
त्रस्त दुनिया को
बदलने के लिए
सन्नद्ध हैं हम !

□ □

(49) योगदान

नयी फ़सल के लिए
प्राण श्रम-वारि-कण कुछ
समर्पित,
धरा की रगों को
विमल रक्त-कण कुछ
समर्पित !
सजल हो
सबल हो !
अभीप्सित जगत हेतु
बोया हुआ हर नवल बीज
रे पल्लवित हो,
सुफल हो !
मधुर रस सदृश
हर हृदय में
भरे भावना...कामना

इ सलिए —
सृष्टि की साधना में
निवेदित
नयी चेतना के प्रवर स्वर !
निःसृत

लोक-हित-निष्ठ

आराधना के सुकर स्वर

समर्पित !

□ □

(50) नवोन्मेष

खण्डित पराजित
ज़िन्दगी ओ !
सिर उठाओ।
आ गया हूँ मैं
तुम्हारी जय सदृश
सार्थक सहज विश्वास का
    हिमवान !

अनास्था से भरी
नैराश्य-तम खोयी
थकी हत -भाग सूनी
ज़िन्दगी ओ !
सिर उठाओ,
और देखो
द्वार दस्तक दे रहा हूँ मैं
तुम्हारे भाग्य-बल का
    जगमगाता सूर्य तेजोवान !

ज़िन्दगी
इस तरह
    टूटेगी नहीं !

ज़िन्दगी

इस तरह

बिखरेगी नहीं !

□ □

रचना-काल : सन् 1962-1966

प्रकाशन-व र्ष : सन् 1977

प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

सम्प्रति उपलब्ध : 'महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा' [खंड : 2],

‘ महेंद्रभटनागर-समग्र’ [खंड : 3] में।

<u>अध्ययन:</u>

1 संघर्ष और सृष्टि की ऋचाएँ / डा. किरणशंकर प्रसाद / ‘ कवि महेंद्र भटनागर का रचना-संसार’

2 संवर्त / श्रीमती ममता मिश्रा / ‘ डा. महेंद्र भटनागर की काव्य-साधना’

3 ‘ संवर्त और युगीन परिस्थितियाँ’ / श्री. रमेश रंजक / ‘ डा. महेंद्र भटनागर का कवि-व्यक्तित्व’ ।

4 ‘ कवि महेंद्र भटनागर का रचना-संसार’ / सं. डा. विनयमोहन शर्मा

(क) आत्म-बोध और नयी दिशा: डा. रामगोपाल शर्मा ‘ दिनेश’

(ख) विभिन्न मनःस्थितियों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति: डा. गोविन्द ‘ रजनीश’

(ग) जीवन्त सृजनात्मक लेखन: डा. श्यामसुन्दर घोष

(घ) मानवतावादी मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध: डा. नत्थन सिंह

5 ‘ सामाजिक चेतना के शिल्पी कवि महेंद्र भटनागर’ / सं. डा. हरिचरण शर्मा

(क) आस्था और जिजीविषा की कविताएँ: डा. शम्भूनाथ चतुर्वेदी

(ख) सर्जना की सहज प्रेरणा का काव्य: डा. तारकनाथ बाली

(ग) मानवीय छटपटाहट और आस्था का काव्य: डा. दुर्गाप्रसाद झाला

(घ) मानवता और मानव-मूल्यों की कविताएँ: डा. स रयूप्रसाद अग्रवाल

☐ ☐